**ओ३म्**

**‘महात्मा प्रभु आश्रित का आदर्श जीवन और उनके कुछ प्रेरक विचार’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

महात्मा प्रभु आश्रित जी आर्यसमाज के उच्च कोटि के साधक व वैदिक विचारधारा मुख्यतः यज्ञादि के प्रचारक थे। उनका जन्म 13 फरवरी, 1887 को जिला मुजफ्फरगढ़ (पाकिस्तान) के जतोई नामक ग्राम में श्री दौलतराम जी के यहां हुआ था। महात्मा जी के ब्रह्मचर्य आश्रम का नाम श्री टेकचन्द था। वानप्रस्थ आश्रम की दीक्षा लेने पर आपने महात्मा प्रभु आश्रित नाम धारण किया। यज्ञ और वैदिक भक्तिवाद के प्रति आपकी गहरी श्रद्धा थी। **आपने वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक की स्थापना की तथा यज्ञ, भक्ति तथा उपासना का गहन प्रचार किया।** 16 मार्च सन, 1967 को आपका निधन हुआ। आपने प्रभूत मात्रा में धार्मिक साहित्य का सृजन किया जिनकी संख्या लगभग 6 दर्जन है। आपकी कुछ रचनायें हैं, सन्ध्या सोपान, यज्ञ रहस्य, अध्यात्मसुधा, आध्यात्मिक अनुभूतियां, अध्यात्म-जिज्ञासा, हवनमंत्र, गायत्री रहस्य, गायत्री कुसुमांजलि, कर्म भोगचक्र, पथप्रदर्शक, पृथिवी का स्वर्ग, सप्त रत्न, सप्त सरोवर, दुर्लभ वस्तु, दिव्य पथ, दृष्टान्त मुक्तावली, जीवन चक्र, प्रभु का स्वरूप, भाग्यवान गृहस्थी, अमृत के तीन घूंट, डरो वह बड़ा जबरदस्त है, साकार पूजा, आत्म चरित्र आदि। स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती जी ने अपका जीवन चरित 3 खण्डों में लिखा है।

**मनमोहन कुमार आर्य**

 अपनी सन्ध्या-सोपान पुस्तक में आपने एक प्रश्न कि मन में आई पाप-वृत्ति को कैसे दूर भगायें, इस का समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा है कि पाप-वृत्ति ऐसे सामने आया करती है जैसे चोर-डाकू संभल-संभलकर आता है। यदि घर वाला सावधान न हो और बल न रखता हो तो लूटा और पीटा जाता है, किन्तु यदि घरवाला तुरन्त अपना बल दिखलाये तो चोर-डाकू दुर्बल हो जाते हैं और घर वाले के बल का अनुमान कर लेते हैं। यदि उसे अपने से अधिक चैतन्य पाते हैं तो तुरन्त भाग जाते हैं, नहीं तो सामने डटे रहते हैं। नितान्त यही दशा साधक के साथ पाप-वृत्ति के सामने हुआ करती है। अतः जब पाप-वृत्ति सामने आये तो साधक चैकस होकर कड़कर बोले – **‘अपेहि मनसस्पतेऽपक्राम परश्चर। परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः।।’** (ऋग्वेद 10/164/1) इस मन्त्र में ईश्वर मनुष्यों को प्रार्थना के लिए प्रेरित कर कहते हैं कि **‘हे मन को पतित करने वाले कुविचारों, दूर हो जाओ। दूर भागो। परे चले जाओ। दूर के विनाश को देखो। जीवित मनुष्य का मन बहुत सामर्थ्य से युक्त है।’** एक अन्य मन्त्र भी पापवृत्ति को हटाने की प्रेरणा करता है। मन्त्र हैः **‘परोऽपेहि मनस्पाप, किमशस्तानि शंससि। परेहि न त्वा कामये, वृक्षां वनानि सं चर, गृहेषु गोषु मे मन।।’** (अथर्ववेद 6/45/10) मन्त्रार्थः **‘हे मन के पाप दूर हट जा। क्यों तू बुरी बातें बताता है? हट जा। मैं तुझको नहीं चाहता, वनों में व वृक्षों में जाकर फिरता रह। मेरा मन घर में और गौ आदि पशुओं की पालना में है।’** महात्मा जी बताते हैं कि मन्त्रस्थ विचार कि ‘**दूर के विनाश को देखो’** का तात्पर्य यह है कि उस बुरे विचार से भविष्य में होने वाली हानि का विचार कर उसका निवारण करना है। जो व्यक्ति साधना नहीं करता उसको यह बात समझ में नहीं आती है। जब मनुष्य आध्यात्मिक विद्या का विद्यार्थी बनता है, तो वह साधनाएं करता है। उन साधनाओं और तप के प्रताप से उसके शीशे साफ होने लगते हैं। इन शीशों से वह देखता है। **यह शीशे दो हैं-एक बुद्धि का, दूसरा मन का। बुद्धि का शीशा तो दूरबीन है (दूर की चीज को देखने वाला) और मन का शीशा खुर्दबीन (छोटी से छोटी चीज को देखने वाला), अतः साधक जब प्रत्येक कार्य को इन शीशों से देखता है, तो उसे एक छोटे से छोटा पाप भी मनरूपी लघुदर्शी यन्त्र से बड़ा भारी दिखाई देने लगता है।** उस पाप की गति और बढ़ाने का अनुमान वह उसकी हलचल से लगाता है। फिर जब दूरदर्शी यन्त्र लगाकर उसे देखता है, तो उसका भयंकर रूप उसके सामने आ जाता है और वह सोचता है- **1- इस पाप का बदला पाने के लिए एक तो मुझे जन्म अवश्य लेना पड़ेगा, 2- इस पाप के कुसंस्कार से दूसरे जन्म में भी मुझे वैसा ही पाप फिर घेरेगा। 3- फिर प्रकटतः उस पाप के कारण से दण्डित हो जाऊंगा और मेरा जीवन कष्ट में फंस जायेगा। 4- मेरे माता-पिता यदि धनाढ्य हुए, सम्मानित हुए तो उनके धन-माल का सर्वनाश होगा, उनकी बड़ी बदनामी होगी और मेरे माथे पर कलंक का टीका रहेगा। 5- यदि मेरी आयु थोड़ी हुई तो माता-पिता के सामने ही भरी जवानी में मेरे मरने का उन्हें अति दुःख होगा। 6- यदि मेरा जीवन उस जन्म में और भी भ्रष्ट तथा पतित हो गया, तो फिर मुझे नेक जन्म लेने पड़ेंगे। 7- यदि मेरे जन्म का वायुमण्डल अच्छा हुआ और मेरी आयु कम हुई तो मुझे यह खेद रहेगा कि मैं कुछ कमाई नहीं कर सका।** **इसका निष्कर्ष बताते हुए महात्मा प्रभु आश्रित जी कहते हैं कि इस प्रकार साधक जब विचरपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता है, तो उपासना से स्वच्छ किये हुए इस मनरूपी लघुदर्शी यन्त्र और ज्ञान से पवित्र किये हुए बुद्धि रूपी दूरदर्शी यन्त्र के प्रयोग से वह पाप से दूर और पुण्य के समीप रहकर अपने जीवन-पथ पर चलता जाता है और उन्नत होता जाता है।**

 महात्मा प्रभु आश्रित जी ने एक स्थान पर इस सृष्टि व प्रकृति की विचित्र लीलाओं का भी चित्रण किया है जिस पर प्रत्येक साधक को विचार करना चाहिये। इससे ईश्वर के प्रति प्रीति व कुछ-कुछ वैराग्य की उत्पत्ति जीवन में हो सकती है। **1- प्राणी भी असंख्यात हैं और योनियां भी असंख्य। क्या विचित्रता है कि एक का रूप दूसरे से नहीं मिलता? जब से सृष्टि चली आती है, 1 अरब 96 करोड़ 8 हजार वर्ष से भी ऊपर हो गए, परन्तु आज तक एक भी सूरत दूसरे से नहीं मिली। प्रभु कैसे और किस बुद्धि से ये बनाते हैं, 2- प्रभु ने धरती बनाई परन्तु उसके खण्ड-खण्ड का प्रभाव भिन्न-भिन्न है। कहीं सोना, कहीं चांदी, कहीं लोहा, कहीं पारा, कहीं सोडा, कहीं खान होती है। कोई धरती अन्न की, कोई बाग की, कोई चाय-काफी की, कोई पथरीली, कोई मैदानी है। असंख्य खानें हैं, कोई लवण, कोई नीलम, कोई हीरे पैदा करती है, कहीं नारियल उगते हैं और कहीं आम। 3- जल है तो उनका प्रभाव अलग-अलग। कोई मीठा, कोई तेलिया, किसी से अतिसार (दस्त का रोग), किसी से कब्ज तथा किसी से ज्वर, किसी से स्वास्थ्य-लाभ होता है। 4- रंग बनाये तो नाम एक, किन्तु रूप एक-समान नहीं। पीले रंग को ही लो। आम, सन्तरा, नींबू, गलगल, जामन, आंवला, आलूबुखारा, किसी का स्वाद भी दूसरे से नहीं मिलता। 5- करेला कड़वा, बीज फीका, नीम कड़वी, निम्बोली मीठी, नींबू खट्टा, बीच कड़वा, पीलू मीठे, बीज कड़वा। 6- सन्तरे की बनावट तथा उत्पत्ति देखों। बीज श्वेत, डंडी मटियाली, पत्ते हरे, फूल श्वेत और मनोहर सुगन्धवाले, छिलका पीला, फांकें गुलाबी, एक-एक सन्तरे में बारह डलियां और एक-एक फांक में तीन-तीन बीज, एक-एक सन्तरे में 36 बीज। 7- अनार की गुधावट देखो, कैसी बंधी हुई है। एक दो दानों को निकाल लो तो बड़े-से-बड़ा कारीगर वैज्ञानिक भी उसे फिर वहां नहीं जमा सकता। 8-गुलाब के फूल में सुगन्धि, परन्तु पत्ते, डंडी और बज में कुछ भी नहीं। 9- माता के गर्भ में बालक कैसे रहता है और कैसे बढ़ता है? कैसे उसका पालन-पोषण होता है? फिर किस प्रकार गर्भ-गुफा से इतना बड़ा बालक निकल आता है? बलिहार! ब्लिहार! 10- मकड़ी अपने ही अन्दर से कैसा महीन तार निकालकर किस प्रकार जाल बनाती है? तथा 11- शरीर की आन्तरिक लीला भी प्रभु ने कैसी विचित्र रची है। मनुष्य एक पदार्थ को भी अनेक नहीं बना सकता, किन्तु प्रभु की लीला देखो! मनुष्य अन्न खाता है तो अन्दर जाकर उस अन्न का क्या-क्या बन जाता है। फिर रंग भिन्न-भिन्न। हड्डी, मांस, रूधिर, मज्जा, चर्बी, खाल, नाखून, बाल, वीर्य, थूक, खंखार आदि। ऐसी शरीर व प्रकृति संबंधी अनेक आश्चर्यचकित करने वाली विचित्रताओं का अन्यत्र भी महात्माजी ने वर्णन किया है।** हम निवेदन करेंगे कि हमारे सुहृद पाठक वैदिक भक्ति साधन आश्रम, आर्यनगर, रोहतक-124001 दूरभाषः 09810033799/ 01262253214 से महात्मा जी का साहित्य मंगाकर इससे जीवन का कल्याण करें व लाभ उठायें।

 **महात्मा जी के जीवन व व्यक्तित्व के बारे में हमारे एक मित्र स्वर्गीय श्री वेदप्रकाश जी हमें बताया करते थे कि एक दम्पत्ति श्री गणेश दास कुकरेजा और उनकी देवी श्रीमति शान्ति देवी महात्मा जी के भक्त वा शिष्य थे। महात्मा जी द्वारा दैनिक यज्ञ की प्रेरणा किए जाने पर उन्होंने कहा कि हमारी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं की हम यज्ञ की सामग्री आदि पदार्थ खरीद सकें। महात्मा जी ने प्रेरणा की आप प्रयास करं, प्रभु सब प्रबन्ध कर देंगें। आपने प्रयास किया और लाहौर में 13 जनवरी, 1939 से दैनिक यज्ञ करना आरम्भ कर दिया गया। इसके बाद आप मृत्यु पर्यन्त यज्ञ करते रहे जिसका निर्वहन उनके सुयोग्य पुत्र श्री दर्शनलाल अग्निहोत्री अद्यावधि कर रहे हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि आपके यहां 13 जनवरी, 1939 मकर संक्रान्ति के दिन यज्ञ की जो अग्नि महात्मा जी की प्रेरणा से प्रज्जवलित हुई थी वह आज तक निरन्तर प्रज्जवलित है। आपके परिवार ने उसे बुझने नहीं दिया है। श्री गणेश दास आर्यसमाज में श्री गणेशदास अग्निहोत्री के नाम से प्रसिद्ध हुए। आपने सभी धार्मिक संस्थाओं को दिल खोलकर दान किया। यह मुख्य बात बताना भी उपयोगी होगा कि जब श्री गणेशदास जी ने यज्ञ आरम्भ किया तो आपके पास यज्ञ करने के लिए धन नहीं था। कुछ ही समय बाद आप फर्नीचर के उद्योग से जुड़कर उद्योगपति बने और अर्थाभाव हमेशा के लिए दूर हो गया। आर्यजगत के विद्वान आचार्य उमेशचन्द कुलश्रेष्ठ कहते हैं कि यज्ञ करने वाला समृद्ध होता है और उसकी वंशवृद्धि चलती रहती है, उसका वंशच्छेद नहीं होता। एक वार्तालाप में श्री दर्शनकुमार अग्निहोत्री जी ने हमें बताया कि अगस्त 1947 में पाकिस्तान बनने पर वहां से लोग अपनी बहुमूल्य वस्तुएं लेकर आये थे परन्तु हमारे माता-पिता सब कुछ वहीं छोड़कर केवल यज्ञकुण्ड व उसकी अग्नि को सुरक्षित भारत लाये थे जो आज तक निर्बाध रूप से प्रज्जवलित है।**

 लेख को समाप्त करने से पूर्व हम वैदिक भाक्ति साधन आश्रम, रोहतक (हरयाणा) और वैदिक साधन आश्रम तपोवन, देहरादून के प्रधान और प्रमुख समाजसेवी श्री दर्शनकुमार अग्निहोत्री जी के महात्माजी के व्यक्तित्व पर विचार प्रस्तुत करने का लोभसंवरण नहीं कर पा रहे हैं। वह लिखते हैं-**‘आधुनिक युग के यशस्वी सन्त प्रातः स्मरणीय महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज समस्त मानव जाति के लिए एक वरदान सिद्ध हुए हैं। पूज्य गुरूदेव परम त्यागी, तपस्वी, कर्मठ कर्मयोगी एवं वैदिक मिशनरी थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन वेद-यज्ञ-योग के प्रचार-प्रसार में लगा दिया। परमात्मा की कृपा से आपकी प्रेममयी सुमधुर वाणी को जिसने सुना उसका कायाकल्प हो गया। पूज्यपाद गुरूदेव जी परमात्मा व ब्रह्म के अनन्य उपासक, मनसा-वाचा-कर्मणा सर्वथा पवित्र निष्काम कर्मयोगी थे। सदैव लोकैषणा, पुत्रैषणा व वित्तैषणा से रहित होकर उन्होंने आखिर में मोक्षपद को प्राप्त किया।’** हम आशा करते हैं कि पाठक इस लेख के विचारों से लाभान्वित होंगे ।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**